# 18. यात्रा का रोमांस

**• मोहन राकेश**

## लेखक परिचय

मदन मोहन गुगलानी, उर्फ मदन मोहन, उर्फ मोहन राकेश का जन्म अमृतसर में सन् 1925 ई० में हुआ। उनकी उच्चतर शिक्षा लाहौर के औरिएण्टल कॉलेज में हुई। उन्होंने शास्त्री और एम.ए. (संस्कृत) की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1947 में विभाजन के बाद वे जालंधर में आकर बसे। वहाँ से उन्होंने हिंदी में एम.ए. किया। कुछ समय तक बम्बई, शिमला और जालंधर में प्राध्यापन किया। 1962–63 में 'सारिका' के संपादक रहे। फिर दिल्ली विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर सांध्य–अध्ययन संस्थान में प्राध्यापक नियुक्त हुए लेकिन वहाँ भी टिक नहीं सके। उन्होंने नौकरी का विचार सदा के लिए त्याग दिया और स्वतन्त्र लेखन में लगे रहे।

मोहन राकेश की प्रतिभा अनेक विधाओं में प्रतिफलित हुई है। कहानी, उपन्यास, नाटक, यात्रा–वृत्तांत और निबंध। परंतु, उन्हें साहित्यकार के उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करने का प्रधान श्रेय उनके तीन नाटकों को है – लहरों के राजहंस, आषाढ़ का एक दिन और आधे–अधूरे। मोहन राकेश स्वभाव से स्वच्छन्दता–प्रेमी थे। एतएव उनमें यायावर–वृत्ति अथवा घुमक्कड़ दृष्टि से साहित्यिक शैली में अंकित किए हैं। उनके यात्रा–वृत्तांत 'आखिरी चट्टान तक' और 'परिवेश' में संगृहीत हैं।

## पाठ परिचय

'यात्रा का रोमांस' निबन्ध और यात्रा–विवरण का मिश्रित रूप है। इसके वस्तुतः दो भाग प्रतीत होते हैं। पहले में यायावर–वृत्ति का विवेचन है। लेखक ने प्रतिपादित किया है कि सच्चा यायावर वही है जिसकी कोई मंजिल नहीं, जो मन की तरंगों के अनुसार आगे–और आगे चलते रहने में विश्वास करता है और जिसे रास्ते की बाधाओं में भी आनन्द की अनुभूति होती है। रचना के दूसरे भाग में कोल्हाई ग्लेशियर की यात्रा का वृत्तांत है। उसमें हिमानी–प्रदेश की संकटपूर्ण यात्रा का बहुत ही स्वाभाविक सजीव, संवेदनात्मक, चित्रोपम, रोमांचक और मनोरंजक वर्णन किया गया है।

## मूल पाठ

यायावर के जीवन का सबसे बड़ा सन्तोष या असन्तोष इसमें है कि उनका रास्ता कभी समाप्त नहीं होता। वह चाहे जितना भटक ले, नई अनजान पगडंडियों का मोह उसके दिल से कभी नहीं जाता। उत्तरी ध्रुव पर जाकर ये पगडण्डियाँ दक्षिणी ध्रुव की ओर जाती प्रतीत होती हैं, और दक्षिणी ध्रुव पर जाकर भूमध्य–रेखा की ओर। और हर पगडंडी के दाएँ–बाएँ से जो छोटी पगडंडियाँ निकल जाती हैं, वे अलग। हर पगडण्डी का अपना आकर्षण होता है, यायावर कहाँ तक पैरों को रोके ? और पगडंडियों के अतिरिक्त अनिश्चित गन्तव्य का भी तो आकर्षण रहता है। अनिश्चित की सम्भावना का हर क्षण जो पुलक देता है, वह बँधे जीवन की सम्पूर्ण निश्चिंतता कहाँ दे पाती है ?

यह वृत्ति जो यायावर को एक जगह से दूसरी जगह ले चलती है – इसे नाम क्या दिया जाए। वाण्डर लस्ट ? परन्तु वाण्डर लस्ट के मूल में जो वृत्ति रहती है, वह क्या है। क्या है जो व्यक्ति को, जहाँ वह हो, वहाँ से अन्यत्र चल देने के लिए विवश करता है ? जिसकी वजह से हर नया रास्ता अच्छा लगता है। जिस रास्ते से एक बार गुजर जाएँ, उस रास्ते से दूसरी बार जाने को मन नहीं होता। सच, बहुत उलझन होती है जब, रात को डेरे पर पहुँचने के लिए भी, चले हुए रास्ते से लौटकर आना पड़ता है। मन होता है कि बस आगे–और आगे–चलते रहा जाए, भले ही वह चलना धरती के घूमने की तरह हो।

यायावर के अस्थिर पैर आखिर ढूँढ़ना क्या चाहते हैं ?

यायावर जानता है, पर वह उसे नाम क्या दे ? वह जानता है कि कुछ है जिसे न पाकर मन में असंतोष घिरा रहता है और जिसकी एक अस्फुट–सी झलक भी मन में आह्लाद और कभी–कभी उन्माद जगा देती है। 'सौन्दर्य' – या कोई भी एक शब्द उसे ठीक से व्यक्त नहीं कर सकता। वह अस्पष्ट 'कुछ' यायावर के रास्ते में जहाँ–तहाँ बिखरा रहता है। यायावर उसे देखता ही नहीं, छूता भी है – और कई जगह सुनता और सूँघता भी है। उसके क्षणिक–से साक्षात्कार से ही चेतना सिहर उठती है। और यदि साक्षात्कार गहरा हो, तो अन्तर में एक शोला–सा भड़क उठता है।

यायावर की खोज, उसकी अस्थिरता, अपने में ही एक सिद्धि है क्योंकि गति का हर क्षण उसे रोमांचित करता है। यात्रा की थकान और बाधाओं में उसे सुख मिलता है। वास्तव में रास्ते की थकान और बाधाएँ ही तो यात्रा को यात्रा बनाती हैं। जहाँ बाधा नहीं है, कुछ अज्ञात और शंकास्पद नहीं है, सब निश्चित, आयोजित और सुरक्षित है, उस यात्रा को यात्रा कहा जाए, या घर का ही एक चलता–फिरता संस्करण ?

रास्ते चलते यायावर की आँख हर चीज को, यहाँ तक कि अपने को भी, दृश्य रूप में देखती है। नीले बादलों के आगे फैली घाटी की हरियाली एक विशाल दृश्यपट बनकर सामने आती है, तो सँकरी पगडंडी से घाटी की तरफ बढ़ती अपनी आकृति भी उस दृश्य पट का ही एक भाग होती है। तांबई आकाश और दूर तक फैले रेत के टीलों का चित्र उसके अपने कदमों की भी छाप लिए रखता है। अपने को दृश्य–रूप में देखता हुआ वह अपने प्रति वितृष्णा से अस्थिर भी हो सकता है, सहानुभूति से द्रवित भी, और अपने पर ठहाका लगाकर हँस भी सकता है।

यात्रा यायावर को जो तटस्थ दृष्टि देती है, वह रोज के द्वंद्वपूर्ण जीवन में रहकर प्राप्त नहीं होती। अपने जीवन के निकट वातावरण से हटकर, निजी परिस्थितियों के दबाव से मुक्त होकर, मन में कोई कुंठा नहीं रहती। नए वातावरण, नई परिस्थितियों और नए व्यक्तियों के साथ अधिक स्वस्थ और स्वाभाविक संबंध स्थापित हो सकता है। ऐसे में व्यक्ति अपनी आन्तरिक प्रकृति के अधिक अनुकूल होकर जी सकता है – अधिक उन्मुक्त भाव से अपने को नए अनुभवों के बीच खुला छोड़ सकता है। उस खुलेपन से उसके नैतिकता के मानदण्ड बदल जाते हैं – वह एक आरोपित नैतिकता में न जीकर अपनी आन्तरिक नैतिकता के अनुसार जीने लगता है। जितना थोड़ा–सा भी समय इस रूप में जी लेता है, वह साधारण रूप से जिए कई–कई वर्षों की तुलना में अधिक सार्थक प्रतीत होता है। उसके सम्बन्धों का आधार हो जाता है एक आदिम आवेश

जिसके कारण वह एक पेड़ के पत्तों को भी सहलाता है तो इस तरह जैसे एक बच्चे के गाल सहला रहा हो। ढलान के मोड़ पर जमे एक पत्थर को भी थपथपाता है, तो इस तरह जैसे घर के एक पालतू जानवर को थपथपा रहा हो। रात को पहाड़ी जंगल में उड़ते कीड़ों की आवाजें उसकी साँसों की आवाज के साथ घुल–मिल जाती हैं, और साँझ के झुटपुट में डेरे की तरफ आती खच्चरों की घंटियाँ उसे अपनी धड़कनों के अन्दर गूँजती महसूस होती है।

अपने से बाहर यायावर के सम्बन्धों के विस्तार की कोई सीमा नहीं रहती। उसे पूरी धरती अपना छोटा–सा घर लगती है और आकाश में बिखरे नक्षत्र वे पड़ोसी जिनसे उसका परिचय बढ़ाने को मन होता है। रात की खामोशी में किसी अनजाने मोड़ के पास खड़ा होकर वह देर–देर तक उन झिलमिलाते नक्षत्रों को देखता रह सकता है, और उस झिलमिलाहट की भाषा में ही अपने लिए कोई संकेत पाकर मुस्करा सकता है। फिर सम्भव है आगे चलते हुए वह उन नक्षत्रों की ओर हाथ हिला दे–जैसे कि देर तक बात कर चुकने के बाद अब उनसे विदा ले रहा हो।

जिसकी मंजिल पहले से तय हो, वह यायावर नहीं है। यायावर का एकमात्र लक्ष्य है अपने मन की तरंगों के अनुसार चलते चलता। वह जहाँ से गुजर जाए, वही उसका रास्ता है, और जहाँ पेड़ के तने से टेक लगा ले, वही उसकी मंजिल है। दिन–भर में उसे कितना रास्ता तय करना है, यह वह पहले से क्यों सोचे ? रात कहाँ बीतेगी, इसकी चिन्ता क्यों करे ? जहाँ जाकर आगे चलने को मन न हो, वहीं उसे रुक जाना है और रात उतर आने पर सोचना है कि रात कहाँ और कैसे बीत सकती है। जो पहले से सब कुछ तय करके चले, उसे मानना होगा कि उसे पथ पर विश्वास नहीं है। जिसका पथ पर विश्वास नहीं है, उसकी पथ के साथ मैत्री कैसे होगी ? और जिसकी पथ के साथ मैत्री नहीं, वह यायावर कैसा ? यायावर पथ का मित्र हो तो उसे पथ के सुख–दुःख पथ के साथ बाँटने होंगे, तभी पथ भी उसके सुख–दुःख बाँट सकेगा। पथ की नाट्यशाला अपने सब परदे तभी उसके लिए उठाएगी जब वह पथ की दलदलों और टेढ़ी–मेढ़ी पगडंडियों से घबराए नहीं। तब दलदल के पास उसे झील का बिल्लौरी पानी चमकता दिखाई देगा और टेढ़ी–मेढ़ी पगडंडियाँ उसे वहाँ ले जाएँगी जहाँ ताजा कमल अपनी अधमुँदी पत्तियाँ खोल रहे होंगे। वह काँटे से छिलकर आँख ऊपर उठाएगा, तो एक घटा फनियर की तरह उस पर घिरी होगी, और जब वह अपने खुश्क होंठों पर जुबान फेरेगा, तो सामने पंक्ति में खड़े बेंत के नाटे पेड़ विभिन्न नृत्य–मुद्राओं में बाँहें हिलाते नजर आएँगे। जहाँ उसका पाँव फिसलेगा, वहाँ नीचे नदी की हरी धारा कई–कई गाँवों का आलिंगन किए दिखाई देगी।

उनके चारों ओर कच्ची बर्फ होगी जिस पर किसी जंगली जानवर के पैरों के निशान बने होंगे। वातावरण में इतना कोहरा होगा कि उसे दो गज से आगे रास्ता नजर नहीं आ रहा होगा। वह कोहरे को चीरता और जंगली जानवर के पैरों के निशानों पर पैरा रखता हुआ दरिया की घाटी की तरफ उतरता जाएगा। परंतु कई बार पथ की नाट्यशाला यायावर को अभिनय की भूमि पर उतार देती है, और स्वयं दर्शक बनकर उस पर व्यंग्य कसती और उसका उपहास उड़ाती है।

कोल्हाई ग्लेशियर। बीहड़ और ऊबड़–खाबड़ रास्ता पार करके मैं तीन आदमियों के साथ लिद्दरवट के डाक–बंगले से वहाँ आया हूँ। वहाँ पता चलता है कि पास की पहाड़ी के ऊपर एक सुन्दर झील है–दूधसर। मैं अपने साथियों के साथ उस बिना पगडंडी की पहाड़ी पर चढ़ने लगता

हूँ। पहाड़ी की चोटी पर पहुँचने पर एक समतल मिलता है जिसके पीछे एक और चोटी है। हम इस तरह कई चोटियाँ पार करते हैं। पर दूधसर जिस चोटी पर है, वह अभी और ऊपर है। मारे प्यास के बुरा हाल होने लगता है, तो मैं अपने साथी घोड़े वाले के लिए डंठल चूसता हूँ। हरी घास से लदी पहाड़ी पर चढ़ते हुए जगह–जगह पाँव फिसल जाते हैं। जहाँ लगता है कि अब आगे और चढ़ सकना असम्भव है, वहीं पहाड़ी की करवट आगे का रास्ता खोल देती है। आखिर हम लोग उस चोटी पर पहुँच जाते हैं जहाँ से झील दूसरी तरफ नीचे नजर आती है। झील का हरा–नीला पानी इतना खामोश और उजला है कि हमें भूल जाता है कि जितना रास्ता चलकर आए हैं, अब उतना ही रास्ता चलकर लौटकर भी जाना है। मैं पत्थरों से लुढ़कता हुआ नीचे झील के किनारे पहुँच जाता हूँ। एक पतला साँप झील के पानी में लकीर खींचता हुआ दूसरे किनारे की तरफ तैर जाता है। मैं झील के किनारे इस तरह टहलता हूँ जैसे वह सृष्टि के निर्माण का पहला क्षण हो–और मैं स्वयं सृष्टि का पहला आदमी, जिसकी आँखें पहली बार उसी क्षण कुछ भी देख सकने के लिए खुली हों। मैं कुछ शब्द बोलकर जैसे पहली बार अपने को अपनी बोल सकने की सामर्थ्य का विश्वास दिलाता हूँ। तभी टप्–टप् बूँदें गिरने लगती हैं। ऊपर से आवाज दी जाती है तो मैं चौंककर जैसे उसे दूसरी सृष्टि की तरफ देखता हूँ जिससे अब मुझे नए सिरे से संबंध स्थापित करना है। पत्थरों का सहारा ले–लेकर ऊपर पहुँचता हूँ, तो बूँदें तेज हो जाती हैं। पहाड़ी के उस तरफ ग्लेशियर है– सदियों की सूखी स्याह बरफ के जबड़े फैलाए। उन जबड़ों के पीछे से ही वह घटा उठी है जो सिर पर आकर बरस रही है। हम लोग कुछ देर एक चट्टान की ओट में सिमटकर बैठे रहते हैं। एक–दूसरे के शरीर की गर्मी और मुँह से निकली भाप अच्छी लगती है। सबसे मन में असमंजस है कि अब लौटते वक्त रास्ता मिल पाएगा या नहीं–पर कोई किसी से यह बात नहीं कहता। साँझ उतर रही है, इसलिए वहाँ से जल्दी चल देना जरूरी है। बूँदें अभी रुकी नहीं, फिर भी हम लोग चट्टान के साये से निकलकर जल्दी–जल्दी चलने लगते हैं। मगर कुछ ही दूर जाकर पता चलता है कि जिस रास्ते से आए थे, उस पर अब इतनी फिसलन हो गई है कि एक–एक कदम चलता मुश्किल है। यह भी डर है कि पाँव जरा–सा उलटा–सीधा पड़ जाने से लुढ़क कर खाई में न जा गिरें। हम लोग उधर से लौटकर दूसरा रास्ता खोजने का प्रयत्न करते हैं। घोड़े वाले को विश्वास है कि वह दूसरे रास्ते से हमें सुरक्षित नीचे पहुँचा देगा। परन्तु कुछ दूर जाने के बाद उसे उस रास्ते की लकीर नहीं मिलती। हम लोग अपनी घबराहट में निश्चय करते हैं कि जैसे भी हो, हमें सीधे नीचे उतर जाना चाहिए। जिस जगह हम खड़े हैं, वह लुढ़कने पत्थरों की पहाड़ी है। एक पत्थर पर पाँव रखने से दस पत्थर नीचे सरक जाते हैं। जहाँ से एक पत्थर लुढ़कता है, वहाँ आस–पास से बीसियों पत्थर एक साथ नीचे को लुढ़कने लगते हैं। किसी–किसी क्षण लगता है कि हमें साथ लिए हुए वह सारी पहाड़ी ही नीचे को लुढ़क जाएगी। लुढ़कते पत्थर आवाज भी इतनी करते हैं कि दिल दहल जाता है। अब हम चार व्यक्ति नहीं चार बिन्दु हैं–एक–दूसरे से अलग–जो पत्थरों पर धीरे–धीरे नीचे को सरक रहे हैं। हर आदमी दूसरे को सावधान कर रहा है–''आराम से......आराम से।'' कहीं से एक भी पत्थर फिसलता है तो हम चारों अपनी–अपनी जगह स्तब्ध हो रहते हैं। तब तक जरा भी आवाज सुनाई देती है, हम अपनी जगह से नहीं हिलते। फिर एक नए सिरे से कोई कहता है,

''आराम से......'' और हम हाथों से टटोल–टटोलकर छह–छह इंच नीचे को सरकने लगते हैं। बीच में फिर वर्षा घेर लेती है, तो हम अपनी–अपनी जगह रुक जाते हैं। वर्षा गुजर जाती है, तो फिर उतरने लगते हैं। घटा, ग्लेशियर और पत्थर–वे सब दर्शक हैं, और हम लोग दृश्य हैं। हमारे प्राण हमारे हाथों में और रीढ़ के निचले हिस्से में सिमट आए हैं। सारी चेतना भी उसी हिस्से में है। जो सबसे आगे है, वह अपने को सबसे ज्यादा खतरे में महसूस करता है जो बीच में है, वह अपने को। जो पीछे है, वह अपने को। जो पीछे है, वह अपने को। आगे सीधी ढलान है। सबके दिल धड़कने लगते हैं। सहसा नीचे का एक पत्थर फिसलता है, और सबसे नीचे का आदमी लुढ़कता–फिसलता हुआ नीचे समतल पर जा पहुँचता है। वहाँ पहुँचकर वह सँभलता है, और पीछे के लोगों को आवाज देने लगता है, ''आ आजो, आ जाओ, कोई डर की बात नहीं है.......।''

लुढ़कते–रेंगते हुए हम लोग किसी तरह नीचे पहुँच जाते हैं। पैरों के नीचे अब समतल है; मगर वह जमीन नहीं है, ग्लेशियर की ठोस बरफ है। अब हमें ठोस बरफ पर चलते हुए आगे जाना है। मगर वह सीधा समतल नहीं है। बरफ में यहाँ–वहाँ बरफ की नालियाँ बनी हैं जिनमें से होकर बरफ का पानी बहता है। आस–पास बरफ की चट्टानें हैं। कई चट्टानों के नीचे बरफ की गुफाएँ हैं जिनकी गहराई उजाले के हल्के स्पर्श से दूर तक चमक जाती हैं। उनमें से किसी गुफा के पास से निकलते हुए पाँव फिसल जाने का अर्थ है हमेशा के लिए उस गुफा के मुँह में खो जाना। हम कहीं अलग–अलग होकर चलते हैं, और कहीं एक–दूसरे की बाँहें थामे हुए। हमारा एक साथी बीच–बीच में सबसे अलग भटक जाता है। वह इस तरह गौर से आस–पास देख रहा है जैसे वहाँ उसे किसी चीज की तलाश हो। पूछने पर वह व्यस्त भाव से कहता है, ''ऐसी जगहों पर कभी–कभी हीरे–जवाहरात पड़े मिल जाते हैं। जरा ध्यान से देखते हुए चलना चाहिए.......।''

एक–डेढ़ मील बरफ का समतल पार करके हम लोग मिट्टी की जमीन पर आते हैं। पैरों में इतना ताकत नहीं कि और दस कदम भी चल सकें। मगर रात उतर रही है और हम लोग रात–भर वहाँ ग्लेशियर के पास नहीं पड़े रह सकते। रात–भर रहने और सर्दी से अपने को बचाए रखने का कुछ भी सामान हमारे पास नहीं है। जैसे भी हो हमें लिद्दरवट के डाक–बंगले तक पहुँचना ही है जो वहाँ से आठ मील दूर है।

ग्लेशियर से लिद्दरवट का सफर घोड़ों पर शुरू होता है पर हम लोग अभी चार मील नहीं जा पाते, कि अँधेरा हो जाता है। आगे रास्ता ऐसा है कि उसे अँधेरे में घोड़ों पर बैठे हुए पार नहीं किया जा सकता। घोड़े वाला तीनों घोड़ों को सँभालकर आगे–आगे चलने लगता है, हम लोग उसके पीछे–पीछे। रास्ते में कोई सीधी पगडंडी नहीं है–पत्थरों–चट्टानों पर से चढ़ते–उतरते हुए जाना है। एक तरफ ग्लेशियर से बहकर आता दरिया है, दूसरी तरफ पहाड़ी जिससे कई–कई झरने बहकर दरिया की तरफ आते हैं। जगह–जगह पत्थरों पर पैर रख–रखकर या घुटने–घुटने पानी में जाकर उन झरनों को पार करना होता है। जो छोटी–सी टार्च हमारे पास है, उसका सैल भी थोड़ी देर में चुक जाता है। दियासलाइयाँ भी खत्म हो जाती हैं। अब अँधेरा है, पानी है, पत्थर है, कीचड़ है और हम लोग हैं। एक जगह चट्टान से नीचे उछलते हुए एक घोड़े की टाँग टूट जाती है। घोड़े वाला लँगड़ाते घोड़े की लगाम थाम लेता है और आवाज देता जाता है, ''होशियार साहब, होशियार! चले आओ साहब, शाबाश!'' और कहीं पत्थरों से छिलते, तथा कहीं कीचड़ में

धप्प–धप्प करते हम लोग चले चलते हैं। अब हमें अँधरे का होश नहीं है। सदी का होश नहीं है। अपना भी होश नहीं है। होश है तो इतना कि लिद्दरवट अभी दूर है और हमें जैसे–तैसे चलते जाना है। एक जगह दरिया के उस पार हल्की रोशनी नजर आती है। क्या वह लिद्दरवट का डाक–बँगला है ? डाक–बँगला अभी दो मील से कम दूर नहीं। तो वह रोशनी कहाँ की है ? किसी गुज्जर का घर है ? हम लोग रुककर हताश स्वर में आवाजें देते हैं। जोर–जोर से चिल्लाकर उधर से किसी की आवाज सुनना चाहते हैं। मगर हमारी आवाजों का कोई उत्तर नहीं मिलता। केवल वह टिमटिमाती रोशनी एकटक हमें ताकती रहती है।

और ऐसे में फिर बारिश पड़ने लगती है। 'शाबाश साहब शाबाश' की आवाज पहले से ऊँची हो जाती है। रास्ता धीरे–धीरे कटता जाता है। पत्थर, चट्टानें और नाले पार होते जाते हैं। आखिर जब आगे जाते घोड़ों की टापें एक लकड़ी के पुल पर सुनाई देती है तो जान में जान आ जाती है। ''पहुँच गए साहब, शाबाश!'' घोड़े वाला चिल्लाकर कहता है और दूर लिद्दरवट के डाक–बँगले में एक बत्ती जल उठती है।

थके–टूटे हम लोग डाक–बँगले पहुँचते हैं। वहाँ पता चलता है कि वह अमावस की रात थी और डाक–बँगले में लोगों ने हमारे जिन्दा लौटकर आने की आशा छोड़ दी थी। फिर जलती आग पर तापे जाते हाथ, चाय की एक–एक प्याली......। सुबह काफी देर से आँख खुलती है, तो पता चलता है कि घोड़े वाला सुबह–सुबह उठकर फिर ग्लेशियर की तरफ चला गया है। उसको दिए गए सामान में जो एक कैमरा–स्टेण्ड था, वह रात को उससे कहीं रास्ते में गिर गया था।

मगर उठकर तैयार होने तक पिछली रात बहुत पीछे रह जाती है। बात होने लगती है कि सरासर–मारसर की यात्रा के लिए अभी चलना चाहिए या कुछ दिन बाद।

अब यायावर फिर दर्शक है। जो गुजर चुका है, वह उसके लिए दृश्य है–उस दृश्य के अंतर्गत अपना–आप भी। कल रात तक जो एक दुर्घटना थी, वह अब उसके लिए एक रोमांचक घटना है। अब नयी पगडंडी उसके सामने है। उससे पूछा जाए कि कमबख्त, तू इतनी जोखिम उठाकर भी जोखिम के रास्ते पर चलने से बाज क्यों नहीं आता, तो वह सिर्फ मुस्करा देगा, क्योंकि जिस दिन वह जान लेगा, उस दिन वह यायावर नहीं रहेगा।

•••

## शब्दार्थ

पगडंडियाँ–/ यायावर–घुमक्कड़ /द्वंद्वपूर्ण–दुविधाओं से भरा हुआ/ तटस्थ–स्थिर/ आह्लाद–खुशी, प्रसन्नता, आनन्द/ नाट्यशाला– जहाँ नाटक खेला जाए/ग्लेशियर–बर्फ के पहाड़/ हताश–निराश/

## वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. डाक–बँगला कहाँ था ?

(क) सरासर–मारसर में (ख) ग्लेशियर के बीच

(ग) झील के पास (घ) लिद्दरवट में ( )

2. यायावर की दृष्टि कैसी होती है ?

(क) तटस्थ (ख) अस्थिर

(ग) घुमक्कड़ (घ) द्वंद्वपूर्ण ( )

उत्तरमाला– (1) घ (2) क

## अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कौन यायावर नहीं है ?
2. इस पाठ में लेखक किस ग्लेशियर की घटना बताता है ?
3. लेखक जिस झील को देखने जाता है, उसका नाम क्या है ?
4. लेखक झील को देखने गया, वह कौन सी रात थी ?
5. लेखक की अगली यात्रा में कहाँ पर जाने की योजना थी ?

## लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. यायावर के जीवन का सबसे बड़ा संतोष या असंतोष किसमें है ?
2. यायावर का एकमात्र लक्ष्य क्या है ?
3. झील का पानी कैसा था ?
4. लेखक के मित्र रास्ते को गौर से देखकर क्यों चल रहे थे ?
5. घोड़े वाला जल्दी उठकर ग्लेशियर की तरफ क्यों गया ?

## निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रस्तुत पाठ में लेखक ने यायावर–वृत्ति की क्या विशेषताएँ बताई हैं ?
2. झील देखकर लौटते हुए लेखक के साथ क्या–क्या घटित हुआ, विस्तार से बताइए।

•••

## यह भी जानें

### 'वाला' प्रत्यय

(क) क्रिया रूपों में 'करने वाला', 'आने वाला', 'बोलने वाला' आदि को अलग लिखा जाए। जैसे – मैं घर जाने वाला हूँ, जाने वाले लोग।

(ख) योजक प्रत्यय के रूप में 'घरवाला', 'टोपीवाला' (टोपी बेचने वाला), दूधवाला आदि एक शब्द के समान ही लिखे जाएँगे।

(ग) 'वाला' जब प्रत्यय के रूप में आएगा तब तो (ख) के अनुसार मिलाकर लिखा जाएगा; अन्यथा अलग से। यह वाला, यह वाली, पहले वाला, अच्छा वाला, लाल वाला, कल वाली बात आदि में 'वाला' निर्देशक शब्द है। अतः इसे अलग ही लिखा जाए। इसी तरह लंबे बालों वाली लड़की, दाढ़ी वाला आदमी आदि शब्दों में भी वाला अलग लिखा जाएगा। इससे हम रचना के स्तर पर अंतर कर सकते हैं। जैसे –

गाँववाला – Villager गाँव वाला मकान – Village house

•••